विधि-विष-द्रुम को विगत काल में विभाव जल से सींचा था,
पर अब उसके फल ना खा, खा निज फल केवल सुख पाता ।
सदा सेव्य है सुन्दरतम है मधुर मधुरतर है साता,
इस विध निज सुख, क्रिया रहित है जिसको मुनिवर है पाता ॥२३२॥

विधि से विधि फल से अविरति से विरत व्रती हो संयत हो,
विकृत चेतना पूर्ण मिटाकर संग रहित हो, संगत हो ।
ज्ञान-चेतनामय निज रस को पूरण भर जीवो,
परम-प्रशम रस-सरस सुधारस है मुनि झट घट-भर पीवो ॥२३३॥

ज्ञान ज्ञेय से ज्ञेय ज्ञान से यदपि प्रभावित होते हैं,
पर ये निज निज के कर्ता पर-के कदापि ना होते हैं ।
सकल वस्तुएं भिन्न-भिन्न हैं ऐसा निश्चय जभी हुवा,
ज्ञान आप में पाप-ताप बिन उज्ज्वल निश्चल तभी हुवा ॥२३४॥

पर से न्यारा स्वयं संभारा धारा इस विध रूप निरा,
गृहण-त्याग-मय-शील-शून्य है अमल ज्ञान सुख कूप मिरा ?
आदि मध्य औ अन्त रहित है जिसकी महिमा द्युतिशाली,
शुद्ध-ज्ञान-घन नित्य उदित है सहज विभामय सुख-प्याली ॥२३५॥

निज आतम में निज आतम को जिसने स्थापित किया यमी,
कच्छप सम संकोचित इन्द्रिय पूर्ण रूप से किया दमी ।
जो कुछ तजने योग्य रहा था उसको उसने त्याग दिया,
ग्राह्य जिसे झट ग्रहण किया, क्यों तू ने पर में राग किया ? ॥२३६॥

स्वयं सुखाकर ज्ञान दिवाकर इस विध निश्चित प्रकट रहा,
सुचिरकाल से पूर्ण रूप से पर द्रव्यन से पृथक रहा ।
उत्तर दो अब ज्ञान हमारा आहारक फिर हो कैसा ?
जिससे तुम हो कहते रहते "काय ज्ञान का हो" ऐसा !! ॥२३७॥

शशिसम उज्ज्वल उज्ज्वलतर हैं निर्विकारतम ज्ञान महा,
इसीलिए जड़काय ज्ञान का हो नहिं सकता जान अहा !
"यथाजात" ज्ञानी का केवल जड़तन ना शिव-कारण हो,
उपादान कारण शिव का-मुनि-ज्ञान, तरण ही तारण हो ॥२३८॥

ज्ञान चरित समदर्शन तीनों एकमेव घुल मिल जाना,
मोक्षमार्ग है यही समझ लो शिव सुख सम्मुख मिल जाना ।
यही सेव्य है यही पेय है उपादेय है ध्येय यही,
मुमुक्षु मुनि को अन्य सभी बस हेय रही या ज्ञेय रही ॥२३९॥

चरित ज्ञान-दृगमय ही शिवपथ, जिसमें जो यति थिति पाता,
ध्यान उसी का करता चिंतन करता निशिदिन रति साता ।
निज में विचरण करता पर से दूर सदा हो जीता है,
वही आर्य ! अनिवार्य मुनीश्वर "समयसाररस" पीता है ॥२४०॥

इस विध पावन शिव फल दाता रत्नत्रय जो तजते हैं,
जड़ तन आश्रित यथा-जात में केवल ममता भजते हैं ।
अनुपम अखण्ड ज्योति पिण्ड शुचि समय सार को नहिं लखते,
भले दिगम्बर बने रहें वे आत्म-बोध जब नहिं रखते ॥२४१॥

बाह्य-क्रिया में उलझे रहते जड़ तन उलटे लटके हैं,
भाग्यहीन वे उन्हें न दर्शन मिलते अन्तर्घट के हैं ।
जैसा तन्दुल बोध जिन्हें ना तुष का संग्रह करते हैं,
वैसा मोही आत्म ज्ञान बिन, तपा-तपा तन मरते हैं ॥२४२॥

देह-नग्नता भर में केवल, जो मुनि ममता रखते हैं,
समय सार को कभी नहिं वे धर के समता लखते हैं ।
निमित्त शिव का देह-नग्नता, पर-आश्रित है, पुद्गल है,
किन्तु ज्ञान तो उपादान है, निज आश्रित है, सद्बल है ॥२४३॥

बस करदो, बहु विकल्प जल्पों से कुछ नहिं होने वाला,
परमारथ का अनुभव कर लो, मानस मल धोने वाला ।
स्वरस-सरस भरपूर-पूर्ण-शुचि ज्ञान विभा से भासुर है,
समयसार ही सार विश्व में, जिस बिन आकुल आ-सुर है ॥२४४॥

विश्वसार है विश्व-सुलोचन अक्षय, अक्षय-सुखकारी,
समय सार का कथन यहाँ अब पूर्ण हो रहा दुखहारी ।
शुद्ध ज्ञान-घन-मय जो शिव सुख पावन परमानन्दपना,
उसे यही बस दिला, नशाता निश्चित मनका-द्वंदपना ॥२४५॥

अचल उजल यह एक अखंडित निज संवेदन में आता,
किन ही बाधावों से-बाधित हो न, अबाधित है भाता ।
इस विध केवल-ज्ञान निकेतन आत्म तत्व यह सिद्ध हुवा,
झुक झुक सविनय प्रणाम उसको करता "यह मुनि" शुद्ध हुवा ॥२४६॥

इति सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकारः

दोहा

ज्ञान दुःख का मूल है ज्ञान हि भव का कूल ।
राग सहित प्रतिकूल है राग रहित अनुकूल ॥१॥

चुन चुन इनमें उचित को अनुचित मत चुन भूल ।
समयसार का सार है निज बिन पर सब धूल ॥२॥

स्याद्वाद-अधिकार

उजल उजल स्याद्वाद-शुद्धि हो जो बुध को अति भाती है,
वस्तु-तत्व की सरल व्यवस्था इसीलिए की जाती है ।
एक ज्ञान ही युगपत् होता उपाय उपेय किस विध है,
इसका भी कुछ विचार करते गुरुवर बुधजन इस विध है ॥२४७॥

पशु सम एकान्ती का निश्चित ज्ञान पूर्णतः सोया है,
पर में उलझा हुवा सदा है निज बल को बस खोया है ।
स्याद्वाद यद्यपि जान यह सकल ज्ञेय का है ज्ञाता,
तदपि निजी पन तजता नहिं है स्वरस भरित ही है भाता ॥२४८॥

देख जगत को "ज्ञान" समझकर एकान्ती बन मनमानी,
पशु सम स्वैरी विचरण करता ज्ञेय-लीन वह अज्ञानी,
जगत-जगत में रहा निरा, पर जगत जानता स्याद्वादी,
जग में रह कर जग से न्यारा, मुनिवर निज रस का स्वादी ॥२४९॥

पर पदार्थ के ग्रहण भाव कर आगत पर-प्रति-छवियों से,
ज्ञान-शक्ति अति निर्बल जिनका जड़ जन नशते पशुओं से ।
अनेकान्त को ज्ञानी लखता, ज्ञेय-भेद-भ्रम हरता है,
सतत उदित पर एक ज्ञान का, अबाध अनुभव करता है ॥२५०॥

पर प्रति-छवि से पंकिल चिति को इक विध, शुचि करने मानी,
स्वपर प्रकाशक ज्ञान स्वतः पर उसे त्यागता अज्ञानी ।
पर ज्ञेयों से चित्रित चिति को स्वतः शुद्धतम स्याद्वादी,
पर्यायों वश अनेकता बस चिति में लखता निज स्वादी ॥२५१॥

निज का अवलोकन ना करता एकान्ती पशु मर मिटता,
पूर्ण प्रकट स्थिर पर को लखता मुग्ध हुवा पर में पिटता ।
स्याद्वादी निज अवलोकन से पूरण-जीवन जीता है,
शुद्ध-बोध द्युति-पाकर भाता तुरत-राग से रीता है ॥२५२॥

निज आतम को नहीं जानता परमें रत, पा विकारता,
विषय-वासना वश निजको शठ सकल, द्रव्यमय निहारता ।
पर का निज में अभाव लख, पर-पर को पर ही जान व्रती,
निज के शुचितम बोध तेज में स्याद्वादी रममान यती ॥२५३॥

भिन्न क्षेत्र स्थित पदार्थ-दल को विषय बनाता अपना है,
बाहर भ्रमता, मरता निज को परमय लख शठ सपना है ।
निज को निज का विषय बनाकर निज में निज बल समेटता,
आत्म क्षेत्र में रत स्याद्वादी होता पर-पन सुमेटता ॥२५४॥

आत्म-क्षेत्र में स्थिति पाने शठ भिन्न-क्षेत्र स्थित पदार्थपन,
तजे संग तज चिति-गत-ज्ञेयों मरता तजता निजार्थपन ।
निज में स्थित हो कर लखता नित पर में निज की अभावता,
स्याद्वादी मुनि पर तजता पर तजता कभी न स्वभावता ॥२५५॥

पूर्व ज्ञान का विषय बना था उसको नशता लख, सो ही,
स्वयं ज्ञान का नाश मान पशु मरता हताश हो मोही ।
बाह्य वस्तुएं बार-बार उठ मिटती, परन्तु स्याद्वादी,
स्वीय काल वश, त्रिकाल ध्रुव निज को लख रहता ध्रुव स्यादी ॥२५६॥

ज्ञेयालम्बन जब से तब से-ज्ञान हुवा वे यों कहें वृथा,
ज्ञेयालम्बन-लोलुप बन शठ पर में रमते सहें व्यथा ।
भिन्न काल का अभाव निज में मान जान वे गतमानी,
सहज, नित्य, निज-निर्मित्त शुचितम ज्ञान पुंज में रत ज्ञानी ॥२५७॥

पर परिणति को निज परिणति लख पर में पाखण्डी रमता,
निज महिमा का परिचय बिन पशु एकान्ती भव-भव भ्रमता ।
सब में निज-निज भाव भरे हैं उन सबसे अति दूर हुवा,
प्रकट निजामृत को अनुभवता स्याद्वादी नहिं चूर हुवा ॥२५८॥

विविध विश्व के सकल ज्ञेय का उद्भव अपने में माने,
निर्भय स्वैरी शुद्ध भाव तज खेल-खेलते मन माने ।
परका मुझे में अभाव निश्चित समझ किन्तु यह मुनि ऐसा,
निजारूढ़ स्याद्वादी निश्चल लसे शुद्ध दर्पण जैसा ॥२५९॥

उद्भव व्यय से व्यक्त ज्ञान के विविध अंश को देख तभी,
क्षणिक तत्व को मान कुधी जन सहते दुख अतिरेक सभी ।
पे स्याद्विद चितिपन सिंचित सरस सुधारस सु पी रहा,
अडिग-अचल बन शुद्ध-बोध-घन सूर्ती रहा, मुनि सुधी रहा ॥२६०॥

निर्मल निश्चल बोध भरित निज आतम को शठ जान अहा !
उजल उछलती चिति परिणति से भिन्न आत्म परमाण अहा ।
नित्य ज्ञान हो भंगुर बनता उसे किन्तु द्युतिमान, वही,
चेतन-परिणति बल से ज्ञानी-ज्ञान क्षणिकता लखे सही ॥२६१॥

तत्व ज्ञान से वंचित ऐसे मूढ़ जनों को दर्शाता,
ज्ञान मात्र वह आत्म तत्व है साधु जनों को हर्षाता ।
अनेकान्त यह इस विध होता सतत सुशोभित अपने में,
स्वयं स्वानुभव में जब आता मिटते सब हैं सपने ये ॥२६२॥

वस्तु तत्व की सरल व्यवस्था उचित रूप से करता है,
अपने को भी उचित स्थान पर स्थापित खुद ही करता है ।
तीन लोक के नाथ जिनेश्वर जिन-शासन पावन प्यारा,
अनेकान्त यह स्वयं सिद्ध है विषय बनाया जग सारा ॥२६३॥

दोहा

मेटे वाद-विवाद को निर्विवाद स्याद्वाद ।
सब वादों को खुश रखे पुनि पुनि कर संवाद ॥१॥

समता भज, तज प्रथम तू पक्षपात परमाद ।
स्याद्वाद आधार ले "समयसार" पढ़ बाद ॥२॥

साध्य-साधक-अधिकार

इसविध अनेक निज बल आकर होकर आतम भाता है,
सहज ज्ञान-पन को फिर भी नहिं तजता पावन साता है
आत्म द्रव्य पर्यय का न्यारा अक्षय अव्यय केतन है,
क्रम-अक्रम-वर्ती पर्यय से शोभित होता चेतन है ॥२६४॥

वस्तु तत्व ही अनेकान्तमय स्वयं रहा, गुरु लिखते हैं
अनेकान्त के लोचन द्वारा जिसे सन्त जन लखते हैं ।
स्याद्वाद की और शुद्धि पा बनते मुनि जन वे ज्ञानी,
जिन मत से विपरीत किन्तु ना जाते बन के अभिमानी ॥२६५॥

किसी तरह पर यत्न सुधी जन वीतमोह बन गत रागी,
केवल निश्चल ज्ञान भाव का आश्रय करते बड़ भागी ।
शिवका साधक रत्नत्रय वे फलत: पा कर शिव गहते,
मूढ़ मोह वश विरागता बिन भव-भव भ्रमते दुख सहते ॥२६६॥

स्याद्वाद से पूर्ण कुशलता पा अविचल संयम-धारी,
पल पल अविरल अविकल निर्मल निज को ध्यावे अविकारी ।
ज्ञानमयी नय क्रियामयी नय इन्हें परस्पर मित्र बना,
पाता मुनिवर वही अकेला शुद्ध-चेतना मात्रपना ॥२६७॥

चेतन रस का पिण्ड चण्ड है सहज भाव से विहस रहा,
विराग मुनि में इसविध आतम उदित हुवा है विलस रहा ।
चिदानन्द से अचल हुवा वह एक रूप ही सदा हुवा,
शुद्ध ज्योति से पूर्ण भरा है प्रभात सुख का सदा हुवा ॥२६८॥

शुद्ध-भावमय विराग-मम-मन में जब द्युतिपन उदित हुवा,
स्याद्वाद से झगर झगर कर स्फुरित हुवा है मुदित हुवा ।
अन्य भाव से फिर क्या मतलब भव या शिव पथ में रखते,
स्वीय भाव बस उदित रहे यही भावना मुनि रखते ॥२६९॥

यद्यपि बहुविध बहुबल आलय आतम तमनाशक साता,
नय के माध्यम ले लखता हूँ खण्ड-खण्ड हो नश जाता ।
खण्ड निषेधित अत: किए बिन अखण्ड चेतन को ध्याता,
शान्त, शान्ततम अचल निराकुल छविमय केवल को पाता ॥२७०॥

ज्ञान मात्र हो ज्ञेय रूप में यह जो मैं शोभित होता,
किन्तु ज्ञेय का ज्ञान मात्र नहिं तथापि हूँ बाधित होता ।
ज्ञेय रूप-धर ज्ञान विकृतियां सतत उगलती उजियाली,
परन्तु ज्ञाता ज्ञान-ज्ञेयमय वस्तु मात्र मम है प्यारी ॥२७१॥

आत्म-तत्व मम चित्रित दिखता कभी चित्र बिन लसता है,
चित्राचित्री कभी-कभी वह विस्मित सस्मित हंसता है ।
तथापि निर्मल-बोध-धारि के करे न मन को मोहित है,
चूंकि परस्पर बहुविध बहुगुण-मिले आत्म में शोभित हैं ॥२७२॥

द्रव्य दृष्टि से एक दीखता पर्यय वश वह नेक रहा,
क्षण-क्षण पर्यय मिटे क्षणिक है, ध्रुव, गुण वश तू देख अहा ?
ज्ञान दृष्टि से विश्व व्याप्त पर स्वीय-देश में खड़ा हुवा,
अद्भुत वैभव सहज आत्म का देखो निज में पड़ा हुआ ॥२७३॥

बहती जिसमें कषाय-नाली शांति सुधा भी झरती है,
भव पीड़ा भी वहीं प्यार कर मुक्ति रमा मन हरती है ।
तीन लोक भी आलोकित है अतिशय चिन्मय लीला है,
अद्भुत से अद्भुत-तम महिमा आतम की जय शीला है ॥२७४॥

सकल विश्व ही युगपत् जिसमें यदपि निरन्तर चमक रहा,
तदपि एक बन जयशाली है सहज तेज से दमक रहा ।
निज रस पूरित रहा अत: वह तत्व बोध से सहित रहा,
चेतन का जो चमत्कार है अचल व्यक्त हो स्फुरित रहा ॥२७५॥

चेतन-मय-शुचि ''अमृतचन्द्र'' की सौम्य ज्योति अवभासित है,
अविचल-आतम में आतम से आतम को कर आश्रित है ।
बाधा बिन वह रही अकेली रही न काली मोह-निशा,
फैली परितः विमल-धवलिमा उजल उठी है दशो दिशा ॥२७६॥

स्वपर-रूप यह विपर्यास हो प्रथम ऐक्य कर निज तन में,
रागादिक कर आतम उलझे कर्तृ-कर्म के उलझन में ।
कर्म-'कर्मफल' चेतन का फिर अनुभव-वश नित खिन्न हुवा,
ज्ञान-रूप में निरत वही अब तन-मन से अति भिन्न हुवा ॥२७७॥

वस्तु तत्व की यथार्थता का वर्णन जिसने किया सही,
शब्द-समय ने 'समयसार' का स्वयं निरूपण किया यही ।
कार्य-रहा नहिं अब कुछ करने ''अमृतचन्द्र'' हूँ गिरि गया,
लुप्त गुप्त हूँ सुप्त निज में सुख अनुभवता भरि गया ॥२७८॥

श्री अमृतचन्द्रसूरिभ्यो नमः

दोहा

दृग व्रत चिति की एकता, मुनिपन साधक भाव ।
साध्य सिद्ध शिव सत्य है, विगलित बाधक भाव ॥१॥

साध्य साधक ये सभी, सचमुच में व्यवहार ।
निश्चय नय मय नयन में, समय समय का सार ॥२॥

समापन

आशीष लाभ तुम से यदि मैं न पाता,
जाता लिखा नहिं ''निजामृत पान'' साता ।
दो ''ज्ञानसागर'' गुरो ! मुझको सुविद्या,
विद्यादिसागर बनूँ तजदूँ अविद्या ॥१॥

दोहा

''कुन्द-कुन्द'' को नित नमूँ, हृदय कुन्द खिल जाय।
परम सुगन्धित महक में, जीवन मम घुल जाय ॥२॥

''अमृत चन्द्र'' से अमृत, है झरता जग-अपरूप ।
पी पी मम मन मृतक भी, अमर बना सुख कूप ॥३॥

तरणि ''ज्ञानसागर'' गुरो ! तारो मुझे ऋषीश
करुणा कर ! करुणा करो कर से दो आशीष ॥४॥

सुफल

मुनि बन मन से जो सुधी करें ''निजामृतपान''
मोक्ष ओर अविरल बढ़े चढ़े मोक्ष सोपान ॥५॥

मंगलकामना

विस्मृत मम हो विगत सर्व विगलित हो मद मान ।
ध्यान निजातम का करूँ, करूँ निजी-गुण गान ॥१॥

सादर शाश्वत सारमय समयसार को जान ।
गट गट झट पट चाव से करूँ ''निजामृतपान'' ॥२॥

रम रम शम-दम में सदा मत रम पर में भूल ।
रख साहस फलतः मिले भव का पल में कूल ॥३॥

चिदानन्द का धाम है ललाम आतम राम ।
तन मन से न्यारा दिखे मन पे लगे लगाम ॥४॥

निरा निरामय नव्य मैं नियत निरंजन नित्य ।
जान मान इस विध तजूँ विषय कषाय अनित्य ॥५॥

मृदुता तन मन वचन में धारो बन नवनीत ।
तब जप तप सार्थक बने प्रथम बनो भवभीत ॥६॥

पापी से मत पाप से घृणा करो अयि ! आर्य ।
नर वह ही बस पतित हो पावन कर शुभ कार्य ॥७॥

भूल क्षम्य हो

लेखक, कवि मैं हूँ नहीं, मुझमें कुछ नहिं ज्ञान ।
त्रुटियाँ होवे यदि यहाँ, शोध पढ़े, धीमान ॥८॥

स्थान एवं समय परिचय

कुण्डल गिरि के पास है नगर दमोह महान ।
ससंघ पहुँचा पुनि जहाँ भवि जन पुण्य महान ॥९॥

देव-गगन गति गंध की वीर जयन्ती आज ।
पूर्ण किया इस ग्रन्थ को निजानन्द के काज ॥१०॥

द्रव्यसंग्रह

मूल : द्रव्यसंग्रह (प्राकृत)
रचनाकार : नेमिचंद सिद्धान्त चक्रवर्ती
पद्यानुवाद : आचार्य विद्यासागर

द्रव्य संग्रह (१)

मंगलाचरण

देवाधिदेव जिन नायक ने किया है,
जो जीव का कथन द्रव्य अजीव का है ।
सौ-सौ सुरेन्द्र झुकते जिनके पदों में,
वन्दूँ सदा विनत हो उनको अहो मैं ॥१॥

भोक्ता स्वदेह परिमाण सुसिद्ध स्वामी,
होता स्वभाव वश हो वह उर्ध्वगामी ।
कर्त्ता अमूर्त उपयोगमयी तथा है,
सो जीव जीवभर की नव ये कथा है ॥२॥

उच्छ्वास स्वाँस बल इन्द्रिय आयु प्यारे,
ये चार प्राण जग जीव त्रिकाल धारे ।
संगीत यों गुन-गुना व्यवहार गाता,
पै जीव में नियम से चिति प्राण भाता ॥३॥

ज्ञानोपयोग इक दर्शन नाम पाता,
यों जीव का द्विविध है उपयोग भाता ।
चक्ष् अचक्ष् अवधी वर केवलादि,
ये चार भेद उस दर्शन के अनादि ॥४॥

मिथ्या, सही मति श्रुतावधि ज्ञान तीनों,
कैवल्य ज्ञान मन पर्यय ज्ञान दोनों ।
यो ज्ञान अष्ट विध हैं गुरु हैं बताते,
प्रत्यक्ष ज्ञान चहु चार परोक्ष भाते ॥५॥

यो चार आठ विध दर्शन ज्ञान वाला,
सामान्य जीव परिलक्षण है निराला ।
ऐसा स्वगीत व्यवहार सुना रहा है,
पै शुद्ध "ज्ञान दृग" निश्चय गा रहा है ॥६॥

ये पंच पंच वसु दो रस वर्ण स्पर्श,
गंधादि जीव गुण को करते न स्पर्श ।
सो जीव निश्चय तया कि अमूर्त्त भाता,
पै मूर्त्त बन्ध वश है व्यवहार गाता ॥७॥

आत्मा विशुद्धनय से शुचि धर्म का है,
औ व्यावहार वश पुद्गल कर्म का है ।
कर्त्ता अशुद्धनय से रति भाव का है,
चैतन्य के विकृत भाव विभाव का है ॥८॥

रे व्यावहार नय से विधि के फलों को,
है भोगता सुख दुखों जड़ पुदगलों को ।
आत्मा विशुद्धनय से निज-चेतना को,
पै भोगता तुम सुनो जिन देशना को ॥९॥

विस्तार संकुचन शक्ति तया शरीरी,
छोटा बड़ा तन प्रमाण दिखे विकारी ।
पै छोड़ के समुद्घात दशा हितैषी,
है वस्तुतः सकल जीव असंख्य देशी ॥१०॥

पृथ्वी जलानल समीर तथा लतायें,
एकेन्द्रि जीव सब थावर ये कहायें ।
है धारते करण हो त्रय चार पंच,
शंखादि जीव त्रस हैं सुख है न रंच ॥११॥

संज्ञी कहाय समना अमना असंज्ञी,
पंचेन्द्रि हो द्विविध शेष सभी असंज्ञी ।
एकेन्द्रि जीव सब बादर सूक्ष्म होते,
पर्याप्त औ इतर ये दिन रैन रोते ॥१२॥

है मार्गणा व गुण थान तथा विकारी,
होते चतुर्दश चतुर्दश कायधारी ।
गाता अशुद्धनय यों सुन भव्य ! प्यारे,
पै शुद्ध, शुद्धनय से, जग जीव सारे ॥१३॥

उत्पाद ध्रौव्य व्यय लक्षण से लसे हैं,
लोकाग्र में स्थित शिवालय में बसे हैं ।
वे सिद्ध न्यून कुछ अंतिम काय से हैं,
निष्कर्म अक्षय सजे गुण आठ से हैं ॥१४॥

आकाश पुद्गल व धर्म अधर्म काल,
ये हैं अजीव सुन तू अयि भव्य बाल ।
रूपादि चार गुण पुद्गल में दिखाते,
है मूर्त्त पुद्गल न शेष अमूर्त्त भाते ॥१५॥

संस्थान भेद तम स्थूलपना व छाया,
औ सूक्ष्मता करम बंधन शब्द माया ।
उद्योत आतप यहाँ जग में दिखाते,
पर्याय वे सकल पुद्गल के कहाते ॥१६॥

धर्मास्तिकाय खुद ना चलता चलाता,
पै प्राणि पुद्गल चले गति है दिखाता ।
मानो चले न यदि वे न उन्हें चलाता,
ज्यों नीर मीन-गति में, गति दान दाता ॥१७॥

ज्यों जीव पुद्गल रुके स्थिति है दिलाता,
होता अधर्म वह है स्थिति दान-दाता ।
मानों चले, नहिं रुके स्थिति दे न भाई,
छाया यथा पथिक को स्थिति में सहाई ॥१८॥

जीवादि द्रव्य दल को अवकाश देता,
आकाश सो कह रहे जिन आत्म जेता ।
होता वही द्विविध लोक अलोक द्वारा,
ऐसा सदा समझ तू जिन शास्त्र सारा ॥१९॥

जीवादि द्रव्य छह ये मिलते जहाँ है,
माना गया अमित लोक यही यहाँ है ।
आकाश केवल, अलोक वही कहाता,
ऐसा बसन्ततिलका यह छंद गाता ॥२०॥

जीवादि द्रव्य परिवर्तन रूप न्यारा,
औ पारिणाम मय लक्षण आदि धारा ।
तू मान काल व्यवहार वही कहाता,
पै वर्तनामय सुनिश्चित काल भाता ॥२१॥

जो एक-एक करके चिर से लसे हैं,
जो लोक के प्रति प्रदेशन में बसे हैं ।
कालाणु है रतन राशि समान प्यारे,
होते असंख्य कहते ऋषि संत सारे ॥२२॥

हैं द्रव्य भेद छह जीव अजीव द्वारा,
श्री वीर ने सदुपदेश दिया सुचारा ।
है अस्तिकाय इनमें बस पंच न्यारे,
पै काल के बिना सुनो अयि भव्य प्यारे ॥२३॥

जीवादि क्योंकि जब हैं इनको इसी से,
श्री वीर 'अस्ति' इस भांति कहे सदी से ।
औ काय से सब सदैव बहुप्रदेशी,
है 'अस्तिकाय फलतः' समझो हितैषी ॥२४॥

आकाश में अमित जीव व धर्म में है,
होते असंख्य परदेश अधर्म में हैं ।
है मूर्त संख्य गतसंख्य अनन्त देशी,
ना काल काय फलतः इक मात्र देशी ॥२५॥

है मूर्त यद्यपि रहा अणु एक देशी,
होता अनेक मिल के अणु नेक देशी ।
तो अस्तिकाय फलतः उपचार से है,
सर्वज्ञ यों कह रहे व्यवहार से है ॥२६॥

जो पुद्गलाणु जड़ है अविभाज्य न्यारा,
आकाश को कि जितना वह घेर डाला ।
माना गया वह प्रदेश यहाँ अकेला,
सर्वाणु स्थान यदि ले वह दे सकेगा ॥२७॥

ना पुण्य पाप विधि आस्रव बंध तत्त्व,
औ निर्जरा मुख्य संवर मोक्ष-तत्त्व ।
ये भी विशेष सब जीव अजीव के हैं,
संक्षेप से गुरु उन्हें कह तो रहे हैं ॥२८॥

तो ! आत्म के उस निजी परिणाम से जो,
हो कर्म आगमन हा ! अविलम्ब से वो ।
है भाव आस्रव वही अरु कर्म आना,
है द्रव्य आस्रव यही गुरु का बताना ॥२९॥

मिथ्यात्व औ अविरती व प्रमाद-योग,
क्रोधादि भावमय आस्रव दु:ख योग ।
ये पाँच-पाँच दश पाँच त्रि चार होते,
देही इन्हें धर सदैव अपार रोते ॥३०॥

मोहादि कर्म पन में ढल पुद्गलों का,
आता समूह जड़ आतम में जड़ों का ।
हो द्रव्य आस्रव वही बहु-भेद वाला,
ऐसा जिनेश कहते सुख वेद शाला ॥३१॥

जो कर्म बन्ध जिस चेतन भाव से हो,
है भाव बन्ध वह दूर स्वभाव से हो ।
दोनों मिले जब परस्पर कर्म आत्मा,
सो द्रव्य बन्ध जिससे निज धर्म ख्यात्मा ॥३२॥

है भाव आस्रव निरोधन में सहाई,
चैतन्य से उदित जो परिणाम भाई ।
सो भाव संवर सुनिश्चय ने पुकारा,
द्रव्यास्रवा रुकत संवर द्रव्य न्यारा ॥३३॥

ये गुप्तियाँ समितियाँ व्रत साधनाएँ ।
सत्यादि धर्म दश द्वादश भावनाएँ ।
औ जीतना परिषहों सुचरित्र नाना,
हैं भाव संवर सभी गुरु का बताना ॥३४॥

भोगा गया करम का झड़ना सुचारा,
कालानुसार तप से निज भाव द्वारा ।
सो भाव, भावमय निश्चित निर्जरा है,
औ कर्म का झरण द्रव्य सुनो जरा है ॥३५॥

सत् त्याग से विधि-झरे अविपाक सो है,
छूटे विधी समय पे सविपाक सो है ।
यों निर्जरा यह नितान्त द्विधा-द्विधा है,
प्राप्तव्य मार्ग अविपाक भली सुधा है ॥३६॥

जो आत्म भाव सब कर्म विनाश हेतू,
सो भाव मोक्ष सुन ले जिन दास रे तू ।
औ आत्म से पृथक हो जड़ कर्म प्यारे,
सो द्रव्य मोक्ष मिलता जिन धर्म धारे ॥३७॥

देही शुभाशुभ विकार विभाव धारी,
है पुण्य पाप मय निश्चय से विकारी ।
होता शुभायु शुभगोत्र सुनाम साता,
है पुण्य शेष बस ! पाप किसे सुहाता ॥३८॥

रे मोक्ष का सुखद कारण ही वही है,
विज्ञान औ चरित दर्शन जो सही है ।
ऐसा कहे कि व्यवहार यथार्थ में तो,
रत्नत्रयात्मक निजात्म पदार्थ में हो ॥३९॥

रे ! आत्म द्रव्य तज अन्य पदार्थ में वो,
ज्ञानादि रत्नत्रय ही न यथार्थ में हो ।
आत्मा रहा इन त्रयात्मक ही स्वत: है,
सो मोक्षकारण निजातम ही अत: है ॥४०॥

है आत्म रूप वह जीव अजीव श्रद्धा,
सम्यक्त्व, किन्तु करता न अभव्य श्रद्धा ।
सम्यक्त्व, होय तब ज्ञान सुचारु सच्चा,
संमोह संशय विमुक्त सुहाय अच्छा ॥४१॥

संमोह संभ्रम ससंशय हीन प्यारा,
कल्यान खान वह ज्ञान प्रमाण प्याला ।
माना गया स्व पर भाव-प्रभाव दर्शी,
साकार नैक विधि शाश्वत सौख्य स्पर्शी ॥४२॥

साकार के बिन विशेष किये बिना ही,
सामान्य द्रव्य भर का वह मात्र ग्राही ।
है भव्य मान वह दर्शन नाम पाता,
ऐसा जिनागम यहाँ अविराम गाता ॥४३॥

हो पूर्व दर्शन जिसे फिर ज्ञान होता,
छद्मस्थ दो न युगपत उपयोग होता ।
दो एक साथ उपयोग महाबली को,
मेरा उन्हें नमन हो जिन केवली को ॥४४॥

जो त्यागता अशुभ को शुभ को निभाना,
मानो उसे ही व्यवहार चारित्र्य जाना ।
ये गुप्तियाँ समितियाँ व्रत आदि सारे,
जाते अवश्य व्यवहार तया पुकारे ॥४५॥

जो बाह्य भीतर क्रिया भववर्धिनी है,
ज्ञानी निरोध उनका करते गुणी हैं ।
वे ही यमी चरित निश्चय धार पाते,
ऐसा जिनेश कहते भव-पार जाते ॥४६॥

है मोक्षमार्ग द्वय को अनिवार्य पाता,
सद्ध्यान लीन मुनि वो निजकार्य धाता ।
भाई अतः यतन से शुचि भाव से रे,
अभ्यास ध्यान निज का कर चाव से रे ॥४७॥

हो चित्त को अचल मेरु अहो बनाना,
हो चाहते सहज ध्यान सदा लगाना ।
अच्छे बुरे सुखद दुःखद वस्तुओं में,
ना मोह द्वेष रति राग करो जड़ों में ॥४८॥

पैंतीस सोलह छ पाँच व चार दो एक,
जो शब्द वाचक रहे परमेष्ठियों के ।
या भव्य भी पद मिले गुरु देशना से,
ध्याओ उन्हें तुम सभी शुचि चेतना से ॥४९॥

जो घाति कर्म दल को जड़ से मिटाया,
संपूर्ण ज्ञान सुख-दर्शन वीर्य पाया ।
औ दिव्य देह स्थित है अरहन्त आत्मा,
है ध्येय ध्यान उसका कर अन्तरात्मा ॥५०॥

दृष्टा व ज्ञायक त्रिलोक अलोक के हैं,
आसीन जो शिखर पे त्रयलोक के हैं ।
दुष्टाष्ट कर्म तन वर्जित ध्येय प्यारे,
आकार से पुरुष सिद्ध सदैव ध्या ! रे ॥५१॥

आचार पंच तप चारित्र वीर्य प्यारा,
औ ज्ञान दर्शन जिनागम ने पुकारा ।
आचार में रत स्वयं पर को कराता,
आचार्य वर्य मुनि ध्येय वही कहाता ॥५२॥

धर्मोपदेश समयोचित नित्य देते,
ज्ञानादि रत्नत्रय में रस पूर्ण लेते ।
होते यतीश उवझाय प्रवीण तातैं,
हो आपके चरण में हम लीन जातैं ॥५३॥

सम्यक्त्व ज्ञान समवेत चरित्र होता,
है मोक्षमार्ग वह है सुख को संजोता ।
जो साधते सतत हैं उसको सुचारा,
वे साधु हैं नमन हो उनको हमारा ॥५४॥

कोई पदार्थ मन में सुविचारता है,
हो वीतराग मुनि राग विसारता है ।
एकत्व को नियम से वह शीघ्र पाता,
संसार में सुखद निश्चय ध्यान ध्याता ॥५५॥

चिन्ता करो न कुछ भी मन से न डोलो,
चेष्टा करो न तन से मुख को न खोलो ।
यों योग में गिरि बनो शुभ ध्यान होता,
आत्म निजात्म रत ही वरदान होता ॥५६॥

सद्ज्ञान पा तप महाव्रत धार पाता,
वो साधु ध्यान-रथ बैठ स्वधाम जाता ।
सद्ध्यान पूर्ण सधने तुम तो इसी से,
ज्ञानादि में निरत हो नित हो रुची से ॥५७॥

मैं 'नेमिचन्द्र' मुनि हूँ लघुधी यमी हूँ,
है 'द्रव्य संग्रह' लिखा पर मैं शमी हूँ ।
विज्ञान कोष गत दो सुसाधु नेता,
शोधे इसे बस यही मन-अक्ष-जेता ॥५८॥

गुरु-स्तुति

हे ! नेमिचन्द्र मुनि कौमुद मोदकारी,
सिद्धान्त पारग विराग चिराग धारी ।
दो ज्ञानसागर गुरो मुझको सुविद्या,
विद्यादिसागर बनूं तज दूँ अविद्या ॥

भूल क्षम्य हो

लेखक कवि में हूँ नहीं मुझमें कुछ नहिं ज्ञान ।
त्रुटियाँ होवें यदि यहाँ शोध पढ़े धीमान ॥

मंगल कामना

चाहो शाश्वत मोक्ष को चाहो केवलज्ञान ।
संगत्याग कर नित करे निज का केवलध्यान ॥
रवि से बढ़ कर तेज है शशि से बढ़कर ज्योत ।
झाँक देख निज में जरा सुख का खुलता श्रोत ॥
पर में सुख कहिं है नहीं खुद ही सुख की खान ।
निजी नाभि में गंध है मृग भटके बिन ज्ञान ॥
आत्म कथा तज क्यों करो नित विकथा निस्सार ॥
पय तज, पीते विष भला क्यों हो निज उद्धार ॥
प्रतिदिन सविनय चाव से इसको पढ तू ! भव्य ॥
सुर सुख शिव सुख नियम से पाले अक्षय द्रव्य ॥

समय एवं स्थान परिचय

देव गगन गति गंध की तिथि श्रुत पंचमि सार ।
ग्राम अभाना में लिखा ध्येय मिले भव पार ॥

द्रव्य संग्रह (२)

(दोहा)

नेमिनाथ को नित नमूँ, नेमिचन्द मुनि-याद ।
नेमिचन्दमुनि को नमूँ, नेमिनाथ बुनियाद ॥१॥

सारे सागर क्षार हैं, मम गुरु मधुर अपार ।
नमूँ ज्ञानसागर, गहूँ, भव-सागर का पार ॥२॥

ज्ञानोदय-छंद

जीव सचेतन द्रव्य रहे हैं तथा अचेतन शेष रहें,
जिनवर में भी जिन-पुंगव वे इस विध जिन-वृषभेष कहें ।
शत-शत सुरपति शत-शत वन्दन जिन-चरणों में सर धरते,
उन्हें नमूं मैं भाव-भक्ति से मस्तक से झुक-झुक कर के ॥१॥

सुनो ! जीव उपयोग-मयी है तथा अमूर्तिक कहलाता,
स्व-तन बराबर प्रमाणवाला कर्ता-भोक्ता है भाता ।
ऊर्ध्व-गमन का स्वभाव वाला सिद्ध तथा है अविकारी
स्वभाव के वश विभाव के वश कसा कर्म से संसारी ॥२॥

आयु, श्वास और बल इन्द्रिय यूं चार-प्राण को धार रहा,
विगत-अनागत-आगत में यह जीव रहा व्यवहार रहा ।
किन्तु जीव का सदा-सदा से मात्र चेतना श्वास रहा,
निश्चय-नय का कथन यही है "यह हम को" विश्वास रहा ॥३॥

आतम में उपयोग द्विविध है आगम ने यह गाया है,
ज्ञान-रूप और दर्शन-पन में गुरुवर ने समझाया है ।
ज्ञात रहे फिर दर्शन भी वह चउविध माना जाता है,
अचक्षु-दर्शन, चक्षु अवधि औ केवल-दर्शन साता है ॥४॥

मति-श्रुत दो-दो और अवधि दो उलटे-सुलटे चलते हैं,
मन-पर्यय और केवल दो यूं ज्ञान भेद वसु मिलते हैं ।
मति-श्रुत परोक्ष, शेष सभी हो विकल-सकल प्रत्यक्ष रहे,
लोकालोकालोकित करते त्रिभुवन के अध्यक्ष कहे ॥५॥

आतम का साधारण-लक्षण वसु-चउ-विध उपयोग रहा,
गीत रहा व्यवहार गा रहा सुनो ! जरा उपयोग लगा ।
किन्तु शुद्धनय के नयनों में शुद्धज्ञान-दर्शन-वाला,
आतम प्रतिभासित होता है बुध-मुनि मन हर्षणहारा ॥६॥

पंच-रूप, रस-पंच, गन्ध-दो आठ-स्पर्श, सब ये जिनमें,
होते ना हैं "जीव" वही है कथन किया है यूं जिन ने ।
इसीलिए हैं जीव अमूर्तिक निश्चय-नय ने माना है,
जीव, मूर्त व्यवहार बताता कर्म-बन्ध का बाना है ॥७॥

पुद्गल कर्मादिक का कर्ता जीव रहा व्यवहार रहा,
रागादिक चेतन का कर्ता अशुद्ध-नय से क्षार रहा ।
विशुद्ध-नय से शुद्ध-भाव का कर्ता कहते सन्त सभी,
शुद्ध-भाव का स्वागत कर लो, कर लो भव का अन्त अभी ॥८॥

आतम को कृत-कर्मों का फल-सुख-दुःख मिलता रहता है,
जिसका वह व्यवहार-भाव से भोक्ता बनता रहता है ।
किन्तु निजी शुचि चेतन-भावों का भोक्ता यह आतम है,
निश्चय-नय की यही दृष्टि है कहता यूं परमागम है ॥९॥

समुद्घात बिन सिकुड़न-प्रसरण-स्वभाव को जो धार रहा,
लघु-गुरु तन के प्रमाण होता "जीव" यही व्यवहार रहा ।
स्वभाव से तो जीवात्मा में असंख्यात-परदेश रहे,
निश्चय-नय का यही कथन है सन्तों के उपदेश रहें ॥१०॥

पृथिवी-जल-अगनी-कायिक औ वायु-वृक्ष कायिक सारे,
बहु-विध ''स्थावर'' कहलाते हैं मात्र एक इन्द्रिय धारे ।
द्वय-तिय-चउ-पंचेन्द्रिय-धारक ''त्रस-कायिक'' प्राणी जाने,
भव-सागर में भ्रमण कर रहे कीट-पतंगे मन माने ॥११॥

द्विविध रहे हैं पंचेन्द्रिय भी रहित-मना और सहित-मना,
शेष जीव सब रहित-मना हैं कहते इस विध विजित-मना ।
स्थावर, बादर सूक्ष्म द्विविध हैं दु:ख से पीडित हैं भारी,
फिर सब ये पर्याप्त तथा हैं पर्याप्तेतर संसारी ॥१२॥

तथा मार्गणाओं में चौदह गुणथानों में मिलते हैं,
अशुद्ध-नय से प्राणी-भव में युगों-युगों से फिरते हैं ।
किन्तु सिद्ध-सम विशुद्ध-तम हैं सभी जीव ये अविकारी,
विशुद्ध-नय का विषय यही है विषय-त्याग दे अघकारी ॥१३॥

अष्ट-कर्म से रहित हुये हैं अष्ट-गुणों से सहित हुये,
अन्तिम तन से कुछ कम आकृति ले अपने में निहित हुये ।
तीन लोक के अग्रभाग पर सहजरूप से निवस रहे,
उदय-नाश-ध्रुव-स्वभाव युत हो शुद्ध ''सिद्ध'' हो दिवस रहे ॥१४॥

पुद्गल-अधर्म-धर्म-काल-नभ पांच द्रव्य इन को मानो,
चेतनता से दूर रहें ये ''अजीव'' तातैं पहिचानों ।
रूपादिक गुण धारण करता मूर्त-द्रव्य ''पुद्गल'' नाना,
शेष द्रव्य हैं अमूर्त, क्यों फिर मूर्तों पर मन मचलाना ? ॥१५॥

टूटन-फूटन रूप भेद औ सूक्ष्म-स्थूलता आकृतियां
श्रवणेन्द्रिय के विषय-शब्द भी प्रतिछवि छाया या कृतियां ।
चन्द्र, चांदनी, रवि का आतप अंधकार आदिक समझो,
''पुद्गल'' की ये पर्यायें हैं पर्यायों में मत उलझो ॥१६॥

गमन-कार्य में निरत रहे जब जीव तथा पुद्गल-भाई,
''धर्म-द्रव्य'' तब बने सहायक, प्रेरक बनता पर नाही ।
मीन तैरती सरवर में जब जल बनता तब सहयोगी,
रुकी मीन को गति न दिलाता उदासीन भर हो, योगी ! ॥१७॥

किसी थान में रुकते हों जब जीव तथा पुद्गल भाई,
''अधर्म'' उसमें बने सहायक, प्रेरक बनता पर नाही ।
रुकने वाले पथिकों को तो छाया कारण बनती है,
चलने वालों को न रोकती उदासीनता ठनती है ॥१८॥

योग्य रहा अवकाश दान में जीवादिक सब द्रव्यों को,
वही रहा ''आकाश-द्रव्य'' है समझाते जिन, भव्यों को ।
दो भागों में हुआ विभाजित बिना किसी से वह भाता,
एक ख्यात है लोक-नाम से अलोक न्यारा कहलाता ॥१९॥

जीव द्रव्य औ अजीव पुद्गल काल-द्रव्य आदिक सारे,
जहाँ रहें बस ''लोक'' वही है लोकपूज्य जिन-मत प्यारे ।
तथा लोक के बाहर, केवल फैला जो आकाश रहा,
''अलोक'' वह है केवल-दर्पण में लेता अवकास रहा ॥२०॥

जीव तथा पुद्गल पर्यायों की स्थिति अवगत जिससे हो,
लक्षण वह व्यवहार-काल का परिणामादिक जिसके हो ।
तथा वर्तना-लक्षण जिसका 'काल' रहा परमार्थ वही,
समझ काल को उदासीन, पर वर्णन का फलितार्थ यही ॥२१॥

इक-इक इस आकाश-देश में इक-इक कर ही काल रहा,
रतनों की वह राशि यथा हो फलत: अणु अणु-काल कहा ।
परिगणनायें ये सब मिलकर अनन्त ना, पर अनगिन हैं,
स्वभाव से तो निष्क्रिय इन को कौन देखते, बिन जिन हैं ? ॥२२॥

जीव-भेद से अजीव-पन से द्रव्य मूल में द्विविध रहा,
धर्मादिक वश षड्विध हो फिर उपभेदों से विविध रहा ।
किन्तु काल तो अस्तिकायपन से वर्जित ही माना है,
शेष द्रव्यहैं अस्तिकाय यूं ''ज्ञानोदय'' का गाना है ॥२३॥

चिर से हैं ये सारे चिर तक इनका होना नाश नहीं,
इन्हें इसी से ''अस्ति'' कहा है जिन ने, जिनमें त्रास नहीं ।
काया के सम बहु-प्रदेश जो धारे उनको ''काय'' कहा,
तभी अस्ति औ कांय मेल से ''अस्तिकाय'' कहलाय यहां ॥२४॥

एक जीव में नियम रूप से असंख्यात-परदेश रहे,
धर्म-द्रव्य औ अधर्म भी वह उतने ही परदेश गहे ।
अनन्त नभ में, पर पुद्गल में संख्यासंख्यानन्त रहे,
एक ''काल'' में तभी काल ना काय रहा, अरहन्त कहें ॥२५॥

प्रदेश इक ही पुदगल-अणु में यद्यपि हमको है मिलता,
रूखे-चिकने स्वभाव के वश नाना-स्कन्धों में ढ़लता ।
होता बहुदेशी इस विध अणु यही हुआ उपचार यहाँ,
सर्वज्ञों ने अस्तिकाय फिर उसे कहा श्रुत-धार यहाँ ॥२६॥

जिसमें कोई भाग नहीं उस अविभागी पुद्गल-अणु से,
व्याप्त हुआ आकाश-भाग वह ''प्रदेश'' माना है जिनसे ।
किन्तु एक आकाश-देश में सब अणु मिलकर रह सकते,
वस्तु तत्व में बुध-जन रमते जड़-जन संशय कर सकते ॥२७॥

आस्रव-बन्धन-संवर-निर्जर-मोक्ष तत्व भी बतलाया,
सात-तत्व, नव-पदार्थ होते पाप-पुण्य को मिलवाया ।
जीव-द्रव्य औ पुद्गल की ये विशेषतायें मानी हैं,
कुछ वर्णन अब इनका करती जिन-गुरु-जन की वाणी है ॥२८॥

द्रव्यास्रव और भावास्रव यों माने जाते आस्रव दो,
आतम के जिन परिणामों से कर्म बने भावास्रव सो ।
कर्म-वर्गणा जड़ हैं जिन का कर्म रूप में ढ़ल जाना,
''द्रव्यास्रव'' बस यही रहा है जिनवर का यह बतलाना ॥२९॥

मिथ्या-अविरति पांच-पांच हैं त्रिविध-योग का बाना है,
पन्द्रह-विध है प्रमाद होता कषाय-चउविध माना है ।
भावास्रव के भेद रहे ये रहे ध्यान में जिन-वचना,
ध्येय रहे आस्रव से बचना जिन-वचना में रच-पचना ॥३०॥

ज्ञानावरणादिक कर्मों में ढ़लने की क्षमता वाले,
पुद्गल-आस्रव ''द्रव्यास्रव'' है जिन कहते, समतावाले ।
रहा एक विध, द्विविध रहा वह चउविध, वसुविध, विविध रहा,
दुखद तथा है, जिसे काटता निश्चित ही मुनि-विबुध रहा ॥३१॥

द्रव्य-भावमय ''बन्ध'' तत्व भी द्विविध रहा है तुम जानो,
चेतन-भावों से विधि बंधता भाव-बन्ध सो पहिचानो ।
आत्म-प्रदेशों कर्म-प्रदेशों का आपस में घुल-मिलना,
''द्रव्य-बन्ध'' है बन्धन टूटे आपस में हम तुम मिलना ॥३२॥

प्रदेश, अनुभव तथा प्रकृति, थिति ''द्रव्य-बन्ध'' भी चउविध हैं,
प्रशम-भाव के पर, जिनेश्वर-पद-पूजक कहते बुध हैं ।
प्रदेश का औ प्रकृति-बन्ध का ''योग'' रहा वह कारण है,
अनुभव-थिति-बन्धों का कारण ''कषाय'' है वृष-मारण है ॥३३॥

चेतन गुण से मण्डित जो है आतम का परिणाम रहा,
कर्मास्रव के निरोध में है कारण, सो अभिराम रहा ।
यही ''भाव-संवर'' है माना स्वाश्रित है सम्बल वर है,
कर्मास्रव का रुक जाना ही रहा ''द्रव्य-संवर'' जड़ है ॥३४॥

पंच-समितियां, तीन-गुप्तियां पंच-व्रतों का पालन हो,
बार-बार बारह-भावन भी दश-धर्मों का धारण हो ।
तथा विजय हो परीषहों पर बहुविध-चारित में रमना,
भेद ''भाव-संवर'' के ये सब रमते इनमें वे श्रमणा ॥३५॥

अपने सुख-दुख फल को देकर जिन-भावों से विधि झड़ना,
यथा-काल या तप-गरमी से ''भाव-निर्जरा'' उर धरना ।
पुद्गल कर्मों का वह झड़ना ''द्रव्य-निर्जरा'' यहाँ कही,
भाव-निर्जरा द्रव्य-निर्जरा सुनो ! निर्जरा द्विधा रही ॥३६॥

सब कर्मों के क्षय में कारण आतम का परिणाम रहा,
''भाव-मोक्ष'' वह यही बताता जिनवर-मत अभिराम रहा ।
आत्म-प्रदेशों से अति-न्यारा तन का, विधि का हो जाना,
''द्रव्य-मोक्ष'' है, मोक्षतत्व भी द्रव्य-भावमय, गोपाना ॥३७॥

शुभ-भावों से सहित हुआ सो जीव ''पुण्य'' हो आप रहा,
अशुभ-भाव से घिरा हुआ ही जीव आप हो ''पाप'' रहा ।
सुर-नर-पशु की आयु-तीन ये उच्चगोत्र भी सुखसाता,
नाम-कर्म सैंतीस पुण्य हैं शेष पाप हैं दुखदाता ॥३८॥

सच्चादर्शन तत्वज्ञान भी सच्चा, सच्चा चरण तथा,
''मोक्षमार्ग-व्यवहार'' यही है, प्रथम यही है शरण-कथा ।
परन्तु ''निश्चय-मोक्षमार्ग'' तो निज आतम ही कहलाता,
क्योंकि आतमा इस तीनों से तन्मय होकर वह भाता ॥३९॥

ज्ञानादिक ये तीन रतन तो आतम में ही झिल-मिलते,
शेष सभी द्रव्यों में झांको कभी किसी को ना मिलते ।
इसीलिए इन रत्नों में नित तन्मय हो प्रतिभासित है,
माना निश्चय मोक्ष-सौख्य का, कारण आतम-भावित है ॥४०॥

जीवा-जीवादिक तत्वों पर करना जो श्रद्धान सही,
''सम-दर्शन'' है वह आतम का स्वरूप माना, जान सही ।
जिसके होने पर क्या कहना संशय-विभ्रम भगते हैं,
समीचीन तो ज्ञान बने वह प्राण-प्राण झट जगते हैं ॥४१॥

विमोह-विभ्रम जहाँ नहीं हैं संशय से जो दूर रहा,
निज को निज ही, पर को पर ही जान रहा, ना भूल रहा ।
समीचीन बस ''ज्ञान'' यही है बहुविध हो साकार रहा,
मन-वच-तन से गुणी-जनों का जिसके प्रति सत्कार रहा ॥४२॥

दृश्य रही कुछ, अदृश्य भी हैं लघु-कुछ, गुरु-कुछ ''वस्तु'' रही,
इसी तरह बस तरह-तरह की स्वभाववाली अस्तु सही ।
''दर्शन'' तो सामान्य मात्र को विषय बनाता अपना है,
विषय-भेद तो ''ज्ञान'' कराता जिन-मत का यह जपना है ॥४३॥

पूर्ण-ज्ञान वह जिन्हें प्राप्त ना उन्हें प्रथम तो दर्शन हो,
बाद ज्ञान उपयोग, नहीं दो एक-साथ, कब दर्शन हो ?
पूर्ण-ज्ञान से पूर्ण-सुशोभित केवलज्ञानी बने हुये,
एक साथ उपयोग धरे दो अन्तर्यामी बने हुये ॥४४॥

अशुभ-भावमय पाप-वृत्ति को मन-वच-तन से जो तजना,
शुभ में प्रवृत्ति करना समुचित ''चारित'' है मन रे भजना ! ।
यह ''चारित-व्यवहार'' कहाता समिति-गुप्ति-व्रत वाला है,
इस विध जिन-शासन है गाता सुधा-सुपूरित प्याला है ॥४५॥

बाहर की भी, भीतर की भी क्रियामात्र को बन्द किया,
भव के कारण पूर्ण मिटाना यही मात्र सौगन्ध लिया ।
उस ज्ञानी का जीवन ही वह रहा परम ''शुचि-चारित'' है,
जिनवाणी का यही बताना मुनीश्वरों से धारित है ॥४६॥

निश्चय औ व्यवहार भेद से द्विविध यहाँ शिव-पन्थ रहा,
ध्यानकाल में निश्चित उसको पाता है मुनि-सन्त अहा ! ।
इसीलिए तुम दत्त-चित्त हो एक-मना हो विजित-मना,
सतत करो अभ्यास-ध्यान का शीघ्र बनो फिर विगत-मना ॥४७॥

शुद्धातम के सहज-ध्यान में होना जब है तल्लीना,
चंचल मन को अविचल करना चाहो यदि निज-अधीना ।
मोह करो मत, राग करो मत, द्वेष करो मत, तुम तन में,
इष्ट रहे कुछ, अनिष्ट भी हैं पदार्थ मिलते त्रिभुवन में ॥४८॥

णमोकार "पैंतीस-वर्ण" का मन्त्र रहा सोलह, छह का,
पांच, चार, दो, इक वर्णों का द्वार-ध्यान का, निज-गृह का ।
यों परमेष्ठी-वाचक वर्णों का नियमित जप-ध्यान करो,
या गुरु-संकेतों पर मन को कीलित कर अवधान करो ॥४९॥

घाति-कर्म चउ समाप्त करके शुद्ध हुये जो, आप्त हुये,
अनन्त-दर्शन, अनन्त-सुख-बल पूर्ण-ज्ञान को प्राप्त हुये ।
परमौदारिक तन-धारक हो परम पूज्य "अरहन्त" हुये,
इन्हें बनाओ "ध्येय" ध्यान में जय ! जय ! जय ! जयवन्त हुये ॥५०॥

लोकशिखर पर निवास करते तीन-लोक के नायक हैं,
लोकालोकाकाश तत्व के केवलदर्शक-ज्ञायक हैं ।
पुरुषरूप आकार लिए है "सिद्धातम" हैं कहलाते,
स्व-तन-कर्म को नष्ट किये हैं ध्यावें उनको हम तातैं ॥५१॥

दर्शन-ज्ञानाचार प्रमुख कर चरित-वीर्य-तप खुद पालें,
पालन करवाते औरों से शिव-पथ पर चलने वाले ।
ये हैं मुनि "आचार्य" हमारे पूज्य-पाद पालक प्यारे,
ध्यान इन्हीं का करें रात-दिन विनीत हम बालक सारे ॥५२॥

भव्य-जनों को धर्म-देशना देने में नित निरत रहे,
तीन-रतन से मण्डित होते लौकिकता से विरत रहे ।
"उपाध्याय" ये पूज्य कहाते यतियों के भी दर्पण हैं,
मनसा-वचसा-वपुषा इनका नमन कोटिशः अर्पण हैं ॥५३॥

यथार्थ दर्शन तथा ज्ञान से नियम रूप से सहित रहे,
निरतिचार वह "चारित ही है मोक्षमार्ग" यह विदित रहे ।
इसी चरित की "साधु" साधना सदा सर्वदा करता है,
ध्यान-साधु का करो इसी से सभी आपदा हरता है ॥५४॥

चिन्ता क्या है, चिन्तन कुछ भी साधु करें वह, पर इतना,
ध्यान रहे बस निरीहता का साधुपना पनपे उतना ।
एक ताजगी निरी-एकता पाता निश्चित साधु वही,
यही "ध्यान है निश्चय" समझो साधु बनो ! पर स्वादु नहीं ॥५५॥

कुछ भी स्पन्दन तन में मत ला बन्द-मुखी हो, जल्प न हो,
चिन्ता, चिन्तन मन में मत कर चेतन फलतः निश्चल हो ।
अपने ही आतम में अपना अविचल हो, जो रमना है,
ध्यान रहे यह परम-ध्यान है और ध्यान तो भ्रमणा है ॥५६॥

व्रत के धारक, तप के साधक श्रुत-आराधक बना हुआ,
वही ध्यान-रथ-धुरा सु-धारे नियम रहा यह बँधा हुआ ।
इसीलिए यदि सुनो तुम्हें भी ध्यानामृत को चखना है,
व्रत में, तप में, श्रुत में निज को निशि-दिन तत्पर रखना है ॥५७॥

बिन्दु-मात्र श्रुत का धारक हूँ पार सिन्धु का कब पाता ?
"नेमिचन्द्र" नामक मुनि, मुझसे लिखा "द्रव्यसंग्रह" साता ।
दूर हुये दोषों से कोसो श्रुत-कोशों से पूर हुये,
शोधें वे "आचार्य" इसे यदि भाव यहाँ प्रतिकूल हुये ॥५८॥

मंगलभावना

मेरा तेरा-पन मिटे, भेद-भाव का नाश ।
रीति-नीति सुधरे सभी, वेद-भाव में वास ॥१॥

भाग्य भला वह क्या रहा, उदय कर्म का मात्र ।
वहाँ देख मत, देख ले, जहाँ धर्म का पात्र ॥२॥

ना तो पर पर रोष हो, ना कर्मों का दोष ।
है अपना अपराध यह, खोया है निज-होश ॥३॥

सदा सरलता साध लो, और कुटिलता त्याग ।
बनो धवल तुम हंस से, विरागता से राग ॥४॥

काले बादल बन, तपी-भूपर बरसो आप ।
भरे पाप-घट पुण्य में, बदले अपने आप ॥५॥

लाभ उलटता हो भला, भला उलटता लाभ ।
हो सब ज्यों का त्यों सदा, भले रहे बदलाव ॥६॥

स्थान एवं समय परिचय

मुक्तागिरि पर मुकत मुनि, साढ़े तीन करोड़
मुक्तागिरि को नित नमूँ, नत-सिर हो कर-जोड़ ॥७॥

स्वर-आतम-रस-गन्ध का, अक्षय-तृतीया योग
पूर्ण हुआ अनुवाद यह, देता ध्रुव आलोक ॥८॥

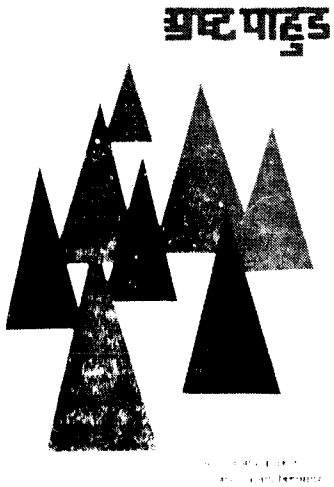

अष्टपाहुड़

मूल : अष्टपाहुड (प्राकृत)
रचनाकार : आचार्य कुंदकुंद स्वामी
पद्यानुवाद : आचार्य विद्यासागर

- अष्टपाहुड़ -

मंगलाचरण

देव शास्त्र-गुरु-स्तवन

''सन्मति'' को मम नमन हो, मम मति सन्मति होय ।
सुर नर पशु गति सब मिटे, गति पञ्चम गति होय ॥१॥

चन्दन चन्दर चांदनी, से जिन धुनि अति शीत ।
उसका सेवन मैं करूँ, मन-वच-तन कर नीत ॥२॥

सुर, सुर-गुरु तक, गुरु चरण-रज सर पर सुचढ़ाय ।
यह मुनि-मन गुरु भजन में, निशि-दिन क्यों न लगाय ॥३॥

श्री कुन्द-कुन्दाय नमः

''कुन्द-कुन्द'' को नित नमूँ, हृदय कुन्द खिल जाय ।
परम सुगंधित महक में, जीवन मम घुल जाय ॥४॥

श्री ज्ञानसागराय नमः

तरणि ''ज्ञानसागर'' गुरो ! तारो मुझे ऋषीश ।
करुणाकर ! करुणा करो कर से दो आशीष ॥५॥

दर्शन पाहुड़

श्री वर्धमान वृषभादि जिनेश्वरों को,
मैं वंदना कर सुजोड़ निजी करों को ।
संक्षेप से सहज दर्शन-मार्ग खोलूँ
खोलूँ जिनागम रहस्य निजात्म धोलूँ ॥१॥

जो धर्म मूल वह दर्शन नाम पाया
ऐसा सुशिष्यजन को जिनने बताया
सद्धर्म का श्रवण ध्यान लगा सुनो ! रे
वे वन्दनीय नहिं दर्शन-हीन को रे ॥२॥

वे भ्रष्ट हैं पुरुष दर्शन-भ्रष्ट जो हैं
निर्वाण प्राप्त करते न निजात्म को हैं
चारित्र भ्रष्ट पुनि चारित पा सिझेंगे
पै भ्रष्ट दर्शनतया न कभी सिझेंगे ॥३॥

जाने अनेक विध आगम को तथापि
आराधना न वरती उनको कदापि
सम्यक्त्व रत्न तज के परमें रमें हैं
वे बार बार भवकानन में भ्रमे हैं ॥४॥

वे कोटि वर्ष तक भी तपते रहेंगे
घोराति-घोर तप भी करते रहेंगे
ना बोधिलाभ उनको मिलता तथापि
सम्यक्त्व से रहित हैं मति मंद-पापी ॥५॥

सम्यक्त्व ज्ञान बल दर्शन वीर्य से हैं
जो वर्धमान, गतमान सदा लसे हैं
कालुष्य-पूर्ण-कलिका मल पाप त्यागी
सर्वज्ञ शीघ्र बनते, मुनि-वीतरागी ॥६॥

सम्यक्त्व का झर झरा झरना झरेगा
वो साधु के हृदय शीतल तो करेगा
तो नव्य कर्म मल आ न कभी लगेगा
औ पूर्व-लिप्त मल भी धुलता धुलेगा ॥७॥

ये भ्रष्ट मात्र जिन दर्शन भ्रष्ट जो हैं
निम्नोक्त, निम्नतम-भ्रष्ट कनिष्ट यो हैं
धिक्कार ज्ञान-व्रत-भ्रष्ट कुधी कहाते
वे तो स्वयं मिट रहे परको मिटाते ॥८॥

धारा स्वयं नियम संयम भोग-हारी
मूलोत्तरादि गुण ले तप योग-धारी
ऐसे सुधर्मरत को कुछ भ्रष्ट स्वैरी
दोषी सुसिद्ध करते मुनि-धर्म-वैरी ॥९॥

हो मूल नष्ट जिसका, फल फूल दाता
फूले फले न फिर वो द्रुम सूख-जाता
त्यों मूल नष्ट जिन दर्शन भ्रष्ट देही
होता न मुक्त भव से न बने विदेही ॥१०॥

ज्यों मूल के वश हि वृक्ष विशाल होता
शाखोपशाख परिवार अपार ढोता
त्यों मोक्षमार्ग जिनदर्शन मूल भाता
प्यारा जिनेश मत है इस भांति गाता ॥११॥

जो भ्रष्ट दर्शन, सुदर्शनधारियों से
है चाहते पद प्रणाम व्रती जनों से
लूले व मूक बनते परलोक में हैं
पाते न बोधि भ्रमते त्रयलोक में हैं ॥१२॥

लो ! जानबूझ यदि दर्शन भ्रष्ट को ही
लज्जा प्रलोभ भय से नमता सुयोगी
पाता न बोधि जिनलिंग सुधारता भी
जो पाप की विनय है करता वृथा ही ॥१३॥

वाक्काय चित्त पर संयम पूर्ण धोते
जो अंतरंग बहिरंग निसंग होते
ले शुद्ध अन्न स्थित हो शुचि बोध धारे
सो जैन दर्शन, सुएषण दोष टारे ॥१४॥

सम्यक्त्व से प्रथम उत्तम बोध होता
सद्बोध से सब पदार्थ सुशोध होता
सत् शोधसे पुनि हिताहित ज्ञान होता ।
सम्यक्त्व मोक्ष पथ में वर-दान होता ॥१५॥

ज्ञाता बने जब हिताहित के अमानी
मिथ्या कुशील तज शील सुधार ज्ञानी
स्वर्गीय वैभव विलास नितान्त पाते
औ अन्त में बन अनन्त, भवान्त जाते ॥१६॥

पीयूष है विषय सौख्य विरेचना है,
पीते सुशीघ्र मिटती चिर वेदना है ।
भाई जरा मरण रोग विनाशती है,
संजीवनी सुखकरी जिन भारती है ॥१७॥

है आद्य लिंग जिन लिंग असंग भाता,
दूजा सुक्षुल्लक व ऐलकका कहाता ।
है आर्यिका पद तृतीय जिनेश गाया,
चौथा न लिंग जिनदर्शन में बताया ॥१८॥

पंचास्तिकाय छह द्रव्य पदार्थ नौ हो,
जीवादि तत्त्व पुनि सात यथार्थ औ हो ।
श्रद्धान भव्य इन ऊपर है जमाता,
मानो उसे तुम सुदृष्टि वही कहाता ॥१९॥

तत्त्वार्थ में रुचि भली भव सिन्धु सेतु,
सम्यक्त्व मान उसको व्यवहार से तू ।
सम्यक्त्व निश्चयतया निज आतमा ही
ऐसा जिनेश कहते शिवराह-राही ॥२०॥

सोपान जो प्रथम शाश्वत मोक्षका है,
है सार रत्न-त्रय में गुण योग का है
सम्यक्त्व रत्न वह है जिन देव गाते,
धारो उसे हृदय में अविलम्ब तातैं ॥२१॥

जो भी बने प्रथम चारित धार लेना,
श्रद्धान शेष व्रत पे फिर धार लेना ।
श्रद्धान ईदृश किया उस भव्य में है,
सम्यक्त्व यों जिन कहे निज द्रव्य में है ॥२२॥

चारित्र ज्ञान सम दर्शन लीन त्यागी,
तल्लीन हैं नियम में तप में विरागी ।
साधू करें सुगुण-गान गुणी जनों का,
वे वन्द्य हैं कथन यों जगदीश्वरों का ॥२३॥

निस्संग नग्न मुनि से चिढ़ता सदा है,
मात्सर्य भाव उनसे रखता मुधा है ।
मिथ्यात्व-मंडित वही मतिमूढ़ मोही,
स्वैरी रहा नियम संयम का विरोधी ॥२४॥

शीलादि के सदन है मुनि के गुणों के,
जो वन्द्य खेचर नरों असुरो सुरों के ।
ऐसे दिगम्बर जिन्हें लख गर्व धारें,
सम्यक्त्व से स्खलित वे नर सर्व सारे ॥२५॥

शास्त्रानुसार नहिं केवल वस्त्र त्यागी,
वे वन्द्य है नहिं असंयत भी सरागी ।
दोनों समान इनमें कुछ भेद ना है,
है एक भी नहिं यमी गुरुदेशना है ॥२६॥

ये जात पाँत कुल भी नहिं वन्द्य होते,
ना वन्द्य भी तन रहा, गुण वन्द्य होते ।
कोई रहे श्रमण श्रावक निर्गुणी हैं,
वे वन्दनीय नहिं हैं कहते गुणी हैं ॥२७॥

जो धारते श्रमणता तपते तपस्वी,
है शील ब्रह्मगुण से लसते यशस्वी ।
श्रद्धाभि-भूत वन में शुचि भाव द्वारा,
वन्दूँ सुमुक्ति पथ को मुनि को सुचारा ॥२८॥

कल्याण में जगत के रत सर्वदा हैं,
हो कि निमित्त हरते जग आपदा है ।
चौंतीस सातिशय चौसठ चामरों से,
शोभे जिनेश नित वन्द्य नरामरों से ॥२९॥

सम्यक्त्व ज्ञान तप और चरित्र प्यारे,
ये हैं सभी गुण सुसंयम के पुकारे ।
चारों मिलें तब मिले वह मोक्ष प्यारा
ऐसा कहें कि जिन शासन है हमारा ॥३०॥

है ज्ञान सार नर का जगमें कहाता,
सम्यक्त्व सार नर का सबमें सुहाता ।
सम्यक्त्व से चरित हो वह कार्यकारी
चारित्र से मुकति हो अनिवार्य प्यारी ॥३१॥

आराधना चउ लिए जिन लिंग धारे,
सम्यक्त्व ज्ञान तप चारित पूर्ण पाले ।
संदेह क्या फिर भला मुनि सिद्ध होते,
वे पाप पंक फलतः अविलम्ब धोते ॥३२॥

सम्यक्त्व शुद्धतम पा समदृष्टिवाले,
कल्याण पंच फलतः विरले संभाले ।
सम्यक्त्व दिव्य मणि है जग पूज्य तातैं,
क्या मर्त्य क्या सुर सुसाधु उसे पुजाते ॥३३॥

सम्यक्त्व का सुफल मानव जन्म पाता,
पाता सुगोत्र कुल उत्तम सद्य पाता ।
सम्यक्त्व से मनुज हो यह क्या न पाता,
है अंत में अमित अक्षय मोक्ष पाता ॥३४॥

चौंतीस सातिशय से लगते विराट,
धारें सुलक्षण जिनेश हजार आठ ।
स्वामी विहार करते जबलौं सही है,
है स्थावरा शुचिमयी प्रतिमा वही है ॥३५॥

योगी यथाविधि यथाबल कर्म सारे,
काटे स्वकीय, तप बारह धर्म धारे ।
निर्वाण प्राप्त करते भव पार जाते,
आते न लौट भव में तन धार पाते ॥३६॥

दोहा

मुनिवर की वह नग्नता रत्नत्रय का धाम ।
दर्शन प्राभृत में सही पाता दर्शन नाम ॥१॥

पूज्य दिगम्बर-पन अतः पूजत पाप पलाय ।
चरित ज्ञान दृग मिलत हैं दर्शन आप सुहाय ॥२॥

सूत्र पाहुड़

जो भी लखा सहज से अरहन्त गाया,
सत् शास्त्र बाद गणनायक ने रचाया ।
सूत्रार्थ को समझने पढ़ शास्त्र सारे,
साधे अतः श्रमण हैं परमार्थ प्यारे ॥१॥

सत सूत्र में कथित आर्ष परम्परा से,
जोभी मिला द्विविध सूत्र अभी जरा से ।
जो जान मान उसको मुनि भव्य होता,
आरूढ़ मोक्ष पथ पे शिव सौख्य जोता ॥२॥

साधू विराग यदि है जिन शास्त्र ज्ञाता,
संसार का विलय है करता सुहाता ।
सूची न नष्ट यदि डोर लगी हुई हो,
खोती नितान्त यदि डोर नहीं लगी हो ॥३॥

साधू ससूत्र यदि है भव में भले हो,
होता न नष्ट भव में भव ही टले वो ।
हो जीव यद्यपि अमूर्त सुसूत्र द्वारा,
आत्मानुभूति कर काटत कर्म सारा ॥४॥

सूत्रार्थ है वह जिसे जिनने बताया,
जीवादि तत्त्व सब अर्थ हमें दिखाया ।
प्राप्तव्य त्याज्य इनमें फिर कौन होते,
जो जानते नियम से समदृष्टि होते ॥५॥

जो व्यावहार परमार्थतया द्विधा है,
सर्वज्ञ से कथित सूत्र सुनो सुधा है ।
योगी उसे समझते शिव सौख्य पाते,
वे पाप पंकपन पूरण हैं मिटाते ॥६॥

विश्वास शास्त्र पर भी नहिं धार पाते,
होते सवस्त्र पद भ्रष्ट कुधी कहाते ।
माने तथापि निज को मुनि, ध्यान देवो,
आहार भूल उनको कर में न देवो ॥७॥

उत् सूत्र पा हरिहरादिक से प्रतापी,
जा स्वर्ग कोटि भव में रुलते तथापि ।
स्थाई नहीं सहज सिद्धि विशुद्धि पाते,
संसार के पथिक हो दुख वृद्धि पाते ॥८॥

निर्भीक सिंह सम यद्यपि हैं तपस्वी,
आतापनादि तपते गुरु हों यशस्वी ।
स्वच्छन्द हो विचरते यदि, पाप पाते,
मिथ्यात्व धार कर वे भव ताप पाते ॥९॥

होना दिगम्बर व अम्बर त्याग देना,
आहार होकर खड़े कर पात्र लेना ।
है मोक्षमार्ग वह शेष कुमार्ग सारे,
ऐसा जिनेश मत है बुध मात्र धारे ॥१०॥

संयुक्त साधु नियमों यम संयमों से,
उन्मुक्त बाधक परिग्रह संगमों से ।
हो वन्द्य वो नर सुरासुर लोक में हैं,
ऐसा कहे जिनप, नाथ त्रिलोक के हैं ॥११॥

बाईस दुस्सह परीषह-यातनायें,
पूरा लगा बल सहें बल ना छिपायें ।
हैं कर्म नष्ट करने रत नग्नदेही,
वे वन्द्यनीय मुनि, वन्दन हो उन्हें ही ॥१२॥

सम्यक्त्व बोध युत हैं जिन लिंग धारी,
जो शेष देश व्रत पालक वस्त्र धारी ।
"इच्छामि" मात्र करने बस पात्र ये हैं
ऐसा नितान्त कहते जिन शास्त्र ये हैं ॥१३॥

वे क्षुल्लकादि गृहकर्म अवश्य त्यागें,
इच्छा सुकार पद को समझे सुभागें ।
शास्त्रानुसार प्रतिमाधर शुद्ध दृष्टी,
पाते सुरेश पद भी शिव सिद्धि सृष्टि ॥१४॥

इच्छादिकार करना निज-चाह होना,
इच्छा जिन्हें न निजकी गुम-राह होना ।
वे धर्म की सब क्रिया करते भले ही,
संसार दु:ख न टले भव में रुले ही ॥१५॥

तू काय से वचन से मन से रुची से,
श्रद्धान आत्म पर तो कर रे इसी से ।
तू जान आत्म भर को निज यत्न द्वारा,
पा मोक्ष लाभ फलत: ध्रुव रत्न प्यारा ॥१६॥

दाता-प्रदत्त कर में स्थित हो दिवा में,
आहार ले, बहुबार नहीं निशा में ।
बालग्र के अणु बराबर भी अपापी,
साधू परिग्रह नहीं रखता कदापि ॥१७॥

है जात रूप शिशु सा मुनि धार भाता,
अत्यल्प भी नहिं परिग्रह भार पाता ।
लेता परिग्रह मनो वह गा जरा सा,
बसों ना करे फिर तुरन्त निगोदवासा ॥१८॥

जो मानते यदि परिग्रह ग्राह्य साधु,
वे वन्दीय नहिं हैं कहलाय स्वादु ।
होता घृणास्पद ससंग अगार होता,
निस्संग ही जिन कहें अनगार होता ॥१९॥

जो पांच पाप तज पंच महाव्रती हैं,
निर्ग्रन्थ मोक्ष पथ पे चलते यती हैं ।
निर्दोष पालन करें त्रय गुप्तियाँ हैं,
वे वन्दनीय, कहती जिन सूक्तियाँ हैं ॥२०॥

जो भोजनार्थ भ्रमते मन मौन पाते,
किंवा सुयाक समिति से कर पात्र धारे ।
सिद्धांत में कथित वो गृह त्यागियों का,
दूजा सुलिंग परमोत्तम श्रावकों का ॥२१॥

आहार बैठ, कर में इक बार पा ले,
आर्या सवस्त्र वह भी इक वस्त्र धारे ।
स्त्री का तृतीय वर लिंग यही कहाता,
चौथा न लिंग मिलता जिन शास्त्र गाता ॥२२॥

सद्दृष्टि तीर्थंकर हो घर में भले ही,
जो वस्त्र धारक जिन्हें शिव न मिले ही ।
निर्ग्रन्थ मोक्ष पथ ही अवशिष्ट सारे,
संसार-पंथ, तजते समदृष्टि वाले ॥२३॥

हो बाहु मूल तल में स्तननाभि में भी,
हो सूक्ष्म जीव महिला जनयोनि में भी ।
वे सर्व वस्त्र तज दीक्षित होय कैसी,
आर्या सवस्त्र रहती, रहती-हितैषी ॥२४॥

सम्यक्त्व मंडित सही शुचि दर्पणा है,
स्त्री योग्य संयम लिए तज दर्पणा है ।
घोरातिघोर-यदि चारित पालती है,
तो आर्यिका तब न पापघाति, सती है ॥२५॥

जो मास मास प्रति मासिक दोष धोती,
शंका बनी हि रहती मन तोष खोती ।
होती निसर्ग शिथिला मति से मलीना,
होती स्त्रियाँ सब अतः निज ध्यान हीना ॥२६॥

अन्नादि खूब मिलते पर अल्प पायें,
इच्छा मिटी कि मुनि के दुख भाग जाये ।
होता अपार जल यद्यपि है नदी पे,
धोने स्ववस्त्र जल अल्प गहे सुधी पै ॥२७॥

दोहा

सूत्र सूचना, सुन, सुना रहा न पर में स्वाद ।
सूत्र-ज्ञान कर, कर स्वयं तप, न कभी परमाद ॥१॥

जिनवर का यह सूत्र है, सुपथ प्रकाशक दीप ।
धारन कर, कर में दिखे सुख कर मोक्ष समीप ॥२॥

चारित्र पाहुड

सर्वज्ञ हैं निखिल दर्शक वीतरागी,
हैं वीतमोह परमेष्ठि प्रमाद त्यागी ।
जो भव्य जीव स्तुत हैं त्रयलोक द्वारा,
अर्हन्त को नमन मैं कर बार बारा ॥१॥

सर्वज्ञ सिद्ध पद नायक पूर्ण साता,
जानाति रत्नत्रय को शिर से नवाता ।
चारित्र पाहुड सुना अब मैं सुनाता,
जो मोक्ष का परम कारण है कहाता ॥२॥

जो जानता "समय में" वह ज्ञान होता,
श्रद्धान होय वह दर्शन नाम ढोता ।
दोनों मिले जब सुनिश्चल शैल होते,
चारित्र निश्चय वही मन मैल धोते ॥३॥

ये जीव के त्रिविध भाव न आज के हैं,
वैसे अनन्त ध्रुव सत्य अनादि के हैं ।
तीनों अशुद्ध पर शुद्ध उन्हें बनाने,
चारित्र है त्रिविध यों जिन शास्त्र माने ॥४॥

श्रद्धान जैन मत में अति शुद्ध होना,
सम्यक्त्व का चरण चारित धार लो ना ।
औ संयमाचरण चारित दूसरा है,
सर्वज्ञ से कथित सेवित है खरा है ॥५॥

मिथ्यात्व पंक तुमने निज पे लिपाया,
शंकादि मैल दृगके दृगपे छिपाया ।
वाक्काय से मनस से उनको हटाओ,
सम्यक्त्व आचरण में निजको बिठाओ ॥६॥

ये अष्ट अंग दृग के, विनिशंकिता हैं,
निःकांक्षिता, विमल-निर्विचिकित्सा है ।
चौथा अमूढ़पन है उपगूहना को,
धारो, स्थिति-करण, वत्सल-भावना को ॥७॥

श्रद्धान होय जिनमें वह मोक्ष दाता,
निःशंक आदि गुण युक्त सुदृष्टि साता ।
धारो सुबोध युत दर्शन को सुचारा,
सम्यक्त्व आचरण चारित वो तुम्हारा ॥८॥

सम्यक्त्व के चरण से द्युतिमान होता,
औ संयमाचरण में रममान होता ।
ज्ञानी वही बस नितान्त अमूढ़ दृष्टी,
निर्वाण शीघ्र गहता तज मूढ़ दृष्टी ॥९॥

सम्यक्त्व के चरण से च्युत हो रहे हैं,
पै संयमाचरण केवल ढो रहे हैं ।
अज्ञान-ज्ञान फल में अनजान होते,
मोही न मोक्ष गहते, बिन ज्ञान रोते ॥१०॥

वात्सल्य हो, विनय, हो गुरु में गुणी में,
अन्नादि दे कर दया करते दुखी में ।
निर्ग्रन्थ मोक्ष पथ की करना प्रशंसा,
साधर्मि-दोष ढकना, नहिं आत्म शंसा ॥११॥

पूर्वोक्त सर्व गुण लक्षित हो उन्हीं में,
सारल्य भावयुत निष्कपटी सुधी में ।
मिथ्यात्व से रहित भाव सुधारते हैं,
वे ही अवश्य जिन दर्शन पालते हैं ॥१२॥

रागाभिभूत मत की स्तुति शंस सेवा,
उत्साह धार यदि जो करते सदैवा ।
अज्ञान मोह पथ से मन जोड़ते हैं,
श्रद्धान जैन मत का तब छोड़ते हैं ॥१३॥

निर्ग्रन्थ जैन मत की स्तुति शंस-सेवा,
उत्साह धार यदि जो करते सदैवा ।
श्रद्धान और जिनमें दृढ़ ही जमाते,
अज्ञान पा, न जिन दर्शन छोड़ पाते ॥१४॥

सम्यक्त्व बोध गहते तुम हो उसी से,
मिथ्यात्व मूढ़पन को तज दो रुची से ।
भाई मिला जब सुधर्म तुम्हें अहिंसा,
सारंभ मोह तज दो अघकर्म हिंसा ॥१५॥

त्यागो परिग्रह पुनः धर लो प्रव्रज्या,
पालो सुसंयम, तपो तप त्याग लज्या ।
निर्मोह भाव लसता उरमें विरागी,
पाता निजी विमल ध्यान सुनो सरागी ॥१६॥

मिथ्यात्व मोह मल दूषित पंथ में ही,
आश्चर्य क्या यदि चले मति मन्द मोही ।
मिथ्या कुबोध वश ही विधि बंध पाते,
अच्छी दिशा पकड़ के कब अन्ध जाते ॥१७॥

विज्ञान-दर्शन तया समदृष्टि जाने,
जो द्रव्य,-द्रव्यगत पर्यय को पिछाने ।
सम्यक्त्व से स्वयम पे कर पूर्ण श्रद्धा,
चारित्र-दोष हरते, करते विशुद्धा ॥१८॥

सम्मोह से रहित हैं उन ही शमी में,
पूर्वोक्त तीन शुचि-भाव बसे यमी में ।
श्रद्धाभिभूत निज के गुण गीत गाते,
काटे कुकर्म झट से भव जीत पाते ॥१९॥

प्रारंभ में गुण असंख्य पुनश्च संख्या,
है कर्म नष्ट करते बनते अशंका ।
सम्यक्त्व आचरण पा दुख को मिटाते,
संसार को लघु परीत सुधी बनाते ॥२०॥

सागार और अनगार तया द्विधा है,
वो संयमाचरण मोक्षद है सुधा है ।
सागार-संग-युत-श्रावक का कहाता,
निर्ग्रन्थ रूप "अनगार" मुझे सुहाता ॥२१॥

सद्दर्शना सुव्रत सामयिकी स्वशक्ति,
औपोषधी सचित त्याग दियाभिभक्ति ।
है ब्रह्मचर्य व्रत सप्तम नाम पाता,
आरंभ संग अनुमोदन त्याग साता ।
उद्दिष्ट त्याग व्रत ग्यारह ये कहाते,
है एक देश व्रत श्रावक के सुहाते ॥२२॥

सानन्द-श्रावक अणुव्रत पाँच पाले,
आरम्भ नाशक गुण व्रत तीन धारे ।
शिक्षा व्रतों चहुँ धरें वह है कहाता,
सागार संयम सुचारित सौख्य दाता ॥२३॥

हो त्याग, स्थूल त्रसकायिक के वधों का
और स्थूल झूठ, बिन दत्त परों धनों का
भाई कभी न पर की वनिता लुभाना
आरम्भ संग परिमाण तथा लुभाना
ये पंच देशव्रत श्रावक तू निभाना ॥२४॥

सीमा विधान करना कि दशों दिशा में,
औ व्यर्थ कार्य करना न किसी दशा में ।
भोगोपभोग परिमाण तथा बनाना,
ये तीन श्रावक गुणव्रत तू निभाना ॥२५॥

सामायिक प्रथम, प्रोषध है द्वितीया,
सिद्धांत में अतिथि पूजन है तृतीया ।
सल्लेखना चरम ये व्रत चार शिक्षा,
शिक्षा मिले तुम बनो मुनि, धार दीक्षा ॥२६॥

होता कला सहित है टुकड़ा सुनो रे !
सागार धर्म इस भाँति कहा, गुणों रे !
पै संयमाचरण शुद्ध तुम्हें सुनाता,
आराध्य धर्म यति का परिपूर्ण भाता ॥२७॥

पच्चीस हो शुचि क्रिया व्रत पाँच धारे,
पंचाक्ष के दमन से सब पाप टारे ।
औ गुप्ति तीन समिति मुनि पाँच पाले,
वो संयमाचरण साधक नग्न प्यारे ॥२८॥

जो चेतनों अचेतनों अवचेतनों में,
अच्छी बुरी जगत की इन वस्तुओं में ।
ना राग रोष मुनि हो करता कराता,
पंचाक्ष-निग्रह वही यह छन्द गाता ॥२९॥

हिंसा यथार्थ तजना भजना अहिंसा,
हो झूँठ स्तेय तज सत्य अचौर्य शंसा ।
अब्रह्म-संग तज, ब्रह्म निसंग होना,
ये पाँच हैं तुम महाव्रत, धार लो ना ॥३०॥